

पारंपरिक भारतीय ज्ञान-परंपरा और सतत विकास

डॉ. ज्योति खातरकर

सहायक प्राध्यापक, इतिहास

शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

Received– 07 July- - 2026

Accepted– 10 July- - 2026

Published– 30 September-2026

Corresponding Author-

डॉ. ज्योति खातरकर

सहायक प्राध्यापक, इतिहास

शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

DOI- <https://doi.org/10.67275/SU.2026.041510>

Funding Policy-

‘Shodh Utkarsh’ is an independent journal and receives no financial support or grant from any public, commercial, or not-for-profit organization.

वित्त पोषण नीति-

‘शोध उत्कर्ष’ एक स्वतंत्र पत्रिका है। इसे किसी भी सार्वजनिक, वाणिज्यिक या गैर-लाभकारी संगठन से कोई वित्तीय सहायता, अनुदान या फंडिंग प्राप्त नहीं होती है।

Copyright Notice -

© 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC-BY 4.0).

कॉपीराइट सूचना-

© 2026 लेखक। यह कार्य क्रिएटिव कॉमन्स अ Attribution 4.0 इंटरनेशनल लाइसेंस (CC-BY 4.0) के अंतर्गत लाइसेंस प्राप्त है।



में प्रकृति को माँ के समान पूजनीय माना जाता था। नदी, वन, पर्वत – सबको जीवन देने वाली शक्तियाँ समझा जाता था। इस दौर की मुख्य बातें ये थीं: ज्ञान का मकसद ज्यादा से ज्यादा उत्पादन करना नहीं, बल्कि संतुलन बनाए रखना था। खेती मौसम के अनुसार होती थी और उपभोग सीमित रखा जाता था। “ऋतु” नाम की एक अवधारणा थी, जिसका मतलब था प्रकृति और समाज को चलाने वाला एक नैतिक नियम। अगर इंसान इस नियम के खिलाफ काम करता, तो प्रकृति और समाज दोनों में असंतुलन पैदा हो जाता था। मनुष्य को धरती, जल, अग्नि, वायु और आकाश यानी पंचमहाभूतों से जुड़ा हुआ माना जाता था, जिससे यह भावना बनती थी कि इंसान प्रकृति का मालिक नहीं बल्कि उसका साथी है। बाद के वैदिक काल में गाँव की सभाएँ और स्थानीय परंपराएँ मिलकर जल, जमीन और जंगल का प्रबंधन करती थीं, यानी संसाधन किसी एक के नहीं बल्कि सबकी साझा जिम्मेदारी होते थे।

3. मौर्य एवं गुप्त काल: राज्य-नीति में ढला हुआ ज्ञान- मौर्य काल आते-आते यह ज्ञान-परंपरा राज्य की नीतियों का हिस्सा बन गई। इस काल की खास बातें: कौटिल्य के अर्थशास्त्र में साफ लिखा मिलता है कि जंगल, खनिज, पानी और खेती की जमीन को राज्य की संरक्षित संपत्ति माना जाता था, और इनका गलत इस्तेमाल करने पर सजा का प्रावधान भी था। जंगलों को अलग-अलग श्रेणियों में बाँटा गया था जैसे संरक्षित वन, शाही वन और आम उपयोग के वन।

सम्राट अशोक की धम्म-नीति में करुणा, अहिंसा और सामाजिक जिम्मेदारी जैसी बातों पर जोर दिया गया, जो बताती हैं कि शासन का मकसद सिर्फ सत्ता चलाना नहीं बल्कि जनकल्याण करना भी था। गुप्त काल में कृषि और सिंचाई को बढ़ावा दिया गया, तालाब और कुएँ बनाना पुण्य का काम माना जाता था, और शिक्षा का केंद्र सिर्फ राज्य तक सीमित न रहकर मठों और स्थानीय समुदायों तक भी फैल गया। इस तरह मौर्य और गुप्त काल यह दिखाते हैं कि जिम्मेदार शासन, संसाधनों की रक्षा और आने वाली पीढ़ियों का ख्याल रखना – ये सब भारतीय राजनीति के मूल सिद्धांत रहे हैं।

4. मध्यकालीन भारत: लोकज्ञान और स्थानीय समाधान- मध्यकालीन भारत यानी लगभग आठवीं से अठारहवीं सदी तक ज्ञान केवल राजा या शास्त्रों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि आम लोगों के अनुभव से बना “लोकज्ञान” इस दौर की पहचान बना। इस दौर की खास बातें-

भूमिका

यह शोध-पत्र इस बात को समझाने की कोशिश करता है कि आजकल जिसे हम “सतत विकास” कहते हैं, वह सोच भारत में बिल्कुल नई नहीं है। आमतौर पर माना जाता है कि सतत विकास बीसवीं सदी की देन है, खासकर सन 1987 की ब्रंटलैंड रिपोर्ट के बाद यह शब्द ज्यादा चर्चा में आया। लेकिन जब हम भारतीय इतिहास को ध्यान से देखते हैं, तो पता चलता है कि संसाधनों को सोच-समझकर इस्तेमाल करना, समाज में सबकी भागीदारी रखना, जरूरत भर उपयोग करना और आने वाली पीढ़ियों का ख्याल रखना ये सारी बातें भारतीय सभ्यता में हजारों साल पहले से मौजूद थीं। इस शोध में सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर वैदिक काल, मौर्य-गुप्त काल, मध्यकालीन भारत, अंग्रेजों के शासन काल और आज के स्वतंत्र भारत तक का ऐतिहासिक अध्ययन किया गया है, ताकि यह समझा जा सके कि हमारी पुरानी ज्ञान-परंपरा आज के सतत विकास लक्ष्यों यानी SDGs से किस तरह जुड़ती है।

1. सिंधु घाटी सभ्यता: सुनियोजित शहर और साझा जल-व्यवस्था
सिंधु घाटी सभ्यता के शहरों की बनावट देखकर आज भी हैरानी होती है। सड़कों के दोनों ओर नालियाँ, स्नानागार, बावड़ियाँ और कुएँ – यह सब दिखाता है कि उस समय शहर बहुत सोच-समझकर बसाए जाते थे। इस काल की खास बातें इस प्रकार थीं: पानी को किसी एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि पूरे समाज की साझा संपत्ति माना जाता था।

जल का प्रबंधन विकेंद्रीकृत तरीके से होता था, यानी यह जिम्मेदारी अलग-अलग जगहों पर बाँटी हुई थी। यह आज के स्वच्छ जल वाले लक्ष्य से मिलता-जुलता है।

हड़प्पा और मोहनजोदड़ों जैसे शहर इतने सुनियोजित थे कि इन्हें आज के “सतत शहर” की अवधारणा का प्राचीन उदाहरण कहा जा सकता है।

2. वैदिक काल: प्रकृति और मनुष्य का नैतिक संबंध- वैदिक काल

हर इलाके के लोग अपने भूगोल और मौसम के हिसाब से बावड़ी, तालाब, जोहड़ और नहरें बनाते थे, जिनका मालिकाना हक भी पूरे समुदाय का होता था किसी एक व्यक्ति का नहीं।

शहरों में मंदिर, तालाब और बाजार को साथ मिलाकर बसाया जाता था, जिससे शहर सिर्फ खरीद-फरोख्त की जगह नहीं बल्कि सामाजिक और पर्यावरण से जुड़ी हुई इकाई बन जाते थे।

खेती में अलग-अलग तरह की फसलें एक साथ उगाई जाती थीं और खेती को पशुपालन के साथ जोड़ा जाता था, जिससे मौसम की मार का असर कम पड़ता था।

इससे यह साफ पता चलता है कि सतत विकास जैसी सोच कोई विदेशी या नई चीज़ नहीं थी, बल्कि यह हमारे अपने गाँवों और शहरों के अनुभव से ही निकली थी।

5. औपनिवेशिक काल: ज्ञान-परंपरा का टूटना

अंग्रेजों के आने के बाद यह पूरी परंपरा टूटने लगी। पहले जो ज्ञान अनुभव, स्थानीय जरूरत और समाज की भागीदारी से जुड़ा था, उसे अंग्रेजों ने राजस्व, बाजार और नियंत्रण के हिसाब से बदल दिया। इस दौर की मुख्य बातें:

भारतीय पारंपरिक ज्ञान को "अवैज्ञानिक" और "पिछड़ा" कहकर नकार दिया गया, जबकि यूरोपीय तरीकों को श्रेष्ठ माना गया।

जमीन पर लगान वसूलने की स्थायी बंदोबस्त और रैयतवाड़ी जैसी नई व्यवस्थाओं ने गाँव की साझा जमीन-व्यवस्था को तोड़ दिया और खेती को सिर्फ बाजार के लिए मुनाफा कमाने का जरिया बना दिया, जिससे तरह-तरह की पारंपरिक फसलें उगाने का तरीका खत्म होने लगा।

जंगलों को सरकारी संपत्ति घोषित कर दिया गया और लोगों का जंगल से जुड़ा पुराना अधिकार अपराध बना दिया गया।

शिक्षा व्यवस्था भी बदल दी गई, अंग्रेजी शिक्षा का मकसद स्थानीय ज्ञान को बढ़ाना नहीं बल्कि अंग्रेजी शासन के लिए कर्मचारी तैयार करना था, जिससे पुराने गुरुकुल और मदरसे पीछे छूटते गए।

कच्चा माल बाहर भेजना और तैयार सामान भारत में बेचना – इस तरह की अर्थव्यवस्था न तो पर्यावरण के लिए अच्छी थी और न ही समाज के लिए न्यायपूर्ण।

यही वजह है कि आज के कई पर्यावरणीय संकट और सामाजिक असमानताएँ इसी दौर की देन मानी जाती हैं।

6. स्वतंत्र भारत: पुराने ज्ञान की फिर से पहचान

आजादी के बाद भी शुरुआती दशकों में विकास का मतलब बड़ी-बड़ी परियोजनाएँ और तेज आर्थिक वृद्धि ही समझा गया, जबकि पारंपरिक जल-प्रबंधन और स्थानीय खेती के तरीकों को ज्यादा तवज्जो नहीं दी गई। लेकिन धीरे-धीरे यह सोच बदलने लगी:

पुराने तालाबों और बावड़ियों को फिर से ठीक करने के प्रयास होने लगे।

जैविक और मिश्रित खेती को फिर से अपनाया जाने लगा।

गाँव के लोगों को खुद फैसले लेने में शामिल करने वाले मॉडल सामने आने लगे।

इससे पता चलता है कि हमारा पुराना ज्ञान अब सिर्फ इतिहास की बात नहीं रह गया, बल्कि आज की नीतियाँ बनाने में भी काम आ सकता है।

निष्कर्ष

कुल मिलाकर यह शोध यह बताता है कि सतत विकास कोई नई पश्चिमी सोच नहीं, बल्कि यह भारतीय सभ्यता में सदियों से चली आ रही समझ का ही आधुनिक रूप है। सिंधु घाटी का जल-प्रबंधन हो, वैदिक काल की नैतिक सोच हो, मौर्य-गुप्त काल की जिम्मेदार शासन-व्यवस्था हो या मध्यकालीन भारत का लोकज्ञान – इन सबमें संसाधनों का सोच-समझकर इस्तेमाल और समाज की साझी जिम्मेदारी साफ दिखाई देती है। अंग्रेजों के शासन ने

इस परंपरा को जरूर तोड़ा, लेकिन आज अगर हम अपने इस पुराने ज्ञान को फिर से समझें और नीति बनाने में शामिल करें, तो सतत विकास के लक्ष्यों को पाना कहीं ज्यादा आसान और व्यावहारिक हो सकता है। यह इस शोध का मूल संदेश है कि हमें आगे बढ़ने के लिए केवल पश्चिम की तरफ ही नहीं, बल्कि अपने इतिहास की तरफ भी देखना चाहिए, क्योंकि उसमें आज की कई समस्याओं का हल पहले से ही छिपा हुआ है।

संदर्भ:

1. गोयलका, दयानंद, चरित्र गठन और मनोबल, गीताप्रेस गोरखपुर, 2010।
2. महेन्द्र, रामचरण, अमृत के झरने, गीताप्रेस गोरखपुर, 2010।
3. श्रीवास्तव, विनय, वेदा में क्या है, राजा पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली।
4. 'भारत की ज्ञान परंपरा और आचार्य' माध्यमिक कक्षाओं के लिए वैकल्पिक पाठ्यक्रम का सीबीएसई का परिपत्र अका.30/2013, 6 मई 2013।